RNI No.: RAJBIL/2013/54153
ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-3 • अंक-12 • त्रैमासिक • अक्टूबर-दिसम्बर, 2015

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	संस्कृत वाङ्मय में भाषा चिन्तन	प्रो. लोकमान्य मिश्र	06-11
02.	जैन पुराणों में वर्णित सल्लेखना	प्रो. विजय कुमार जैन	12-16
03.	भाषाः समस्या एवं समाधान	डॉ. अमिता जैन	17-19
04.	अवतारवाद का जैनदृष्टि से विमर्श	डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा	20-24
05.	गुरु की महत्ता	श्रीमती कान्ता पारीक	25-27
06.	प्राचीन लोकगीतों में सल्लेखना/समाधिमरण	डॉ. श्रीमती राका जैन	28-34
07.	निःशुल्क एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के पर्याय 'सत्य भारती विद्यालय'	अंकुश शर्मा	35-37
08.	श्रीमद्भगवद् गीता में तन-मन और भव रोग से मुक्ति	डॉ. प्रकाश वर्मा (सोनी)	38-42
09.	Need of Continuous and comprehensive Evaluation in Education	P. K. Pandia	43-47
10.	The Real Scenano of Higher Education	Ms. Tripti Dubey	48-52
11.	Teaching English at College Level : An Evaluative Study	Chitra Dadheech	53-57

अवतारवाद का जैनदृष्टि से विमर्श

डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा

संसार के भिन्न-भिन्न देशों तथा धर्मों में अवतारवाद धार्मिक नियम के समान आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। पूरबी और पश्चिमी धर्मों में यह सामान्यतः मान्य तथ्य के रूप में स्वीकृत किया गया है।

अवतारवाद की हिन्दू धर्म में विशेष प्रतिष्ठा है। अत्यंत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक यह उस धर्म के आधारभूत मौलिक सिद्धान्त में अन्यतम है। 'अवतार' का शाब्दिक अर्थ है भगवान् का अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा भौतिक जगत् में मूर्तरूप से आविर्भाव होना, प्रकट होना। 'अवतार' तत्त्व का द्योतक प्राचीनतम शब्द 'प्रादुर्भाव' है। श्रीमद्भागवत में व्यक्त शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैष्णव धर्म में अवतार का तथ्य विशेष रूप से महत्त्वशाली माना जाता है, क्योंकि विष्णु (या नारायण) के ऊपर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा अर्चा नामक पंचरूपधारण का सिद्धांत पांचरात्र का मौलिक तथ्य है। इसीलिये वैष्णवजन भगवान् के इन नाना रूपों की उपासना अपनी रूचि तथा प्रीति के अनुसार अधिकतर करते हैं। शैवमत में भगवान् शंकर की नाना लीलाओं का वर्णन मिलता है,परंतु भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती के मूल रूप की उपासना ही इस मत में सर्वत्र प्रचलित है।

किसी सभ्य एवं विवेकशील समाज में विचारों की विभिन्नता एवं तन्मूलक सम्प्रदायों का भेद या बहुलता का होना स्वाभाविक है। इन्हीं कारणों से भारत जैसे विशाल एवं धर्मप्रधान देश में अनेक सम्प्रदायों एवं दर्शनों के आविर्भाव, विकास एवं संरक्षण के लिए समुचित अवसर मिलते रहे हैं। एक सीमा तक इन स्वस्थ एवं स्वाभाविक सम्प्रदाय भेदों ने व्यक्तियों की सत्प्रवृत्तियों तथा सद्विचारों के विकास में अपूर्व सहयोग प्रदान किया। साथ ही साथ यह भी कटु सत्य है कि अस्वस्थ साम्प्रदायिक उन्माद ने देश और समाज का बड़ा अहित भी किया है।

दर्शनशास्त्र का प्रारम्भ साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावनाओं के निराकरण के लिए ही हुआ है। यही कारण है कि दर्शन के क्षेत्र में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग साम्प्रदायिक भेदभाव से ऊपर उठकर सहानुभूति तथा सौहार्द के पुनीत परिवेश में अवस्थित होकर ही आत्मतत्त्व आदि विषयक अपनी समस्याओं को सुलझाते रहे हैं।